अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी एवं सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
Peer Reviewed Refereed शोध पत्रिका
ISSN: 2348 – 2605 Impact Factor: 5.659 Volume 9-Issue 4, (October-December 2021)

# स्त्री विमर्शः धर्म एवं पितृसत्ता के परिप्रेक्ष्य में

डॉ0 कामना जैन,
सीनियर एसि0 प्रो0, राजनीति विज्ञान,
एस0 एस0 डी0 पी0 सी0 गर्ल्स (पी0जी0) कालेज,
रूड़की, हरिद्वार, उत्तराखण्ड

## सार संक्षेप

**''नारी परिवार की नींव है, परिवार समुदाय की तथा समुदाय राष्ट्रकी''** इससे स्पष्ट है कि स्त्री ही राष्ट्र की नींव है। जिस देश में स्त्रियों का यथोचित सम्मान होगा, वही राष्ट्र एक आदर्श व महान राष्ट्र बन सकता है। है। किंतु घोर विडम्बना है कि विभिन्न कालचक्रों में धर्म व संस्कृति के नाम पर लगभग प्रत्येक समाज में सर्वाधिक प्रताड़ित भी स्त्री को ही किया गया है। उन्हें दबाया गया एवं पुरूषों की अपेक्षा सदैव ही निम्न स्थान पर रखा गया। प्रस्तुत शोध पत्र में यह अध्ययन करने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार धर्म के नाम पर पितृसत्तामक समाज द्वारा स्त्री को पुरूषों की अपेक्षा निम्न स्थान दिया गया है।

**मुख्य बिन्दु– स्त्री, पितृसत्ता, धर्म, दयनीय स्थिति, कुरीतियाँ**

अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी एवं सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
Peer Reviewed Refereed शोध पत्रिका
ISSN: 2348 – 2605 Impact Factor: 5.659 Volume 9-Issue 4, (October-December 2021)

# स्त्री विमर्शः धर्म एवं पितृसत्ता के परिप्रेक्ष्य में

डा0 कामना जैन

**पितृसत्तामक समाज में स्त्रीः–**

**रायडन** का कथन है कि **"स्त्रियों ने ही प्रथम सभ्यता की नींव डाली है और उन्होंने ही जंगलों में मारे मारे भटकते फिरते हुए पुरूषो का हाथ पकड़ कर स्थिर जीवन में बसाया है।**[1] पारिवारिक सामाजिक जीवन में स्थिरता लाने हेतु कुछ नियम निर्धारित किए गए, जिसमें 'धर्म' की प्रमुख भूमिका रही। विभिन्न धार्मिक समुदायों ने जीवन निर्वाह, खान–पान, विवाह, स्त्री–पुरूष सम्बन्ध आदि के विषय में अपने विशिष्ट नियम बनाए। कालान्तर में जीवन शैली के ये तरीके पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तातरित होने लगे तो इसे ही संस्कृति कहा गया। समाजीकरण का सर्वाधिक प्रभावपूर्ण माध्यम संस्कृति व धर्म है। प्रायः महिलाएँ ही संस्कृति एवं धर्म में रूचि रखती है और परिवार की अधिकांशतः परम्पराओं एवं धार्मिक नियमों का श्रद्धापूर्वक वे ही निर्वाह करती हैं।[2] हालांकि संस्कृति कोई स्थिर धारणा नहीं है। बदलते परिवेश, समय व परिस्थितियों के साथ इन में भी परिवर्तन आता है, पर जो भी, जैसी भी धार्मिक सांस्कृतिक परम्पराऐं हैं, उनकी अग्रणी वाहक 'स्त्री' ही है।

किंतु यह गहन अध्ययन की विषयवस्तु है कि जब धर्म के अन्तर्गत सभी जीवधारियों को एक समान माना जाता है तो फिर समाज में वंश, रंग, जाति, धर्म व लिंग के आधार पर एक वर्ग श्रेष्ठ व दूसरा निम्न व हीन किसी प्रकार बन गया। इस सम्बन्ध में प्रमुख नारीवादी विचारक **सिमॉन द बुआ** अपनी पुस्तक '**द सेकेंड सैक्स**' में लिखती हैं **'औरत जन्म नहीं लेती वरन् बना दी जाती है।'** और जब औरत बनाने की बात आती है तो उसका दारोमदार धर्म की आड़ में अंकुरित, पुष्पित एवं पल्लवित पितृसत्तात्मक समाज को जाता है। जिसने धर्म के नाम पर ऐसी सामाजिक संस्कृति को बढ़ावा दिया जिसके स्त्री के लिए पूर्व निश्चित कठोर नियम थे, जो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होते चले गए। और जिससे पुरूष वर्चस्व एवं महिला पराधीनता को बढ़ावा मिलता चला गया।

'पितृसत्ता' शब्द अंग्रेजी के 'पैट्रिआर्की' का हिंदी रूपान्तरण है जो कि पैट्रिआर्क, शब्द से बना है, जिसका अर्थ प्राधि–धर्माध्यक्ष होता है। यह पद श्रेणी व्यवस्था पर आधारित कुछ चर्च के बिशपों में से उच्च पद पर आसीन किसी खास बिशप के लिए प्रयुक्त होता

ISSN: 2348 – 2605 Impact Factor: 5.659 Volume 9-Issue 4, (October-December 2021)

है। 'नारीवादी' विचारधारा के अन्तर्गत पितृसत्ता एक ऐसी सामाजिक सत्ता को अभिव्यक्त करती है जिसका पलड़ा पुरूषों की ओर झुका होता है। पितृसत्ता मुख्यतः दो तरीकों से लोगों पर नियंत्रण स्थापित करती है, पहला वातावरण का निर्माण करके एवं दूसरा जन संचार माध्यमों से सोचने समझने की क्षमता पर नियंत्रण स्थापित करके।[3]

सभ्यताओं का इतिहास दर्शाता है कि जब जब निम्न जातियों, समुदायों एवं महिलाओं की सामाजिक स्थिति एवं सशक्तिकरण सम्बन्धी समस्याओं पर वैचारिक विमर्श किया गया, तो सदैव धर्म के नाम पर उन्हें पीछे धकेल कर पूर्व निर्धारित परम्पराओं व रूढ़ियों में जकड़ दिया गया।[4] पितृसत्तात्मक मानसिकता वाले पुरूषों ने धार्मिक ग्रन्थों, टीकाओं आदि की व्याख्या इस प्रकार की कि सामाजिक सत्ता पुरूष वर्ग के हाथ में आ गयी एवं प्रमुख निर्णय अधिकारी पुरूष ही रहे। इसका एक प्रमुख कारण पुरूष में शारीरिक बल की अधिकता के साथ ही विशिष्ट परिस्थितियों (मासिक स्राव एवं गर्भावस्था) के दौरान महिलाओं का शारीरिक दृष्टि से कमजोर होना भी रहा।

**ईसाई धर्म :–**

ईसाईयों का विश्वास है कि ईश्वर ने पहले आदमी को फिर औरत का निर्माण कर महिलाओं को स्थायी रूप से द्वितीय स्थान दिया।[5] आदम की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए 'ईव' को बनाया। अतः वे अनावश्यक हैं तथा उनका निर्माण पुरूषों को खुश रखने के लिए किया गया है। ईसाई धर्म में ईश्वर को फादर कहा जाता है। जीसस भी एक पुरूष ही हैं एवं चर्च के सभी पोप पुरूष अर्थात् फादर ही हैं।[6] ईसा मसीह की माता 'मेरी' की पूजा प्रचलित करके पाश्चात्य जगत में ईसाई धर्म ने पहली बार नारी की मातृ भाव से पूजा का प्रचार किया।[7]

बाइबल में भी ईसाई धर्म में हमेशा पुरूषो को ही महत्व दिया गया है। 1895 में **एलिजाबेथ स्टेनटॉन** ने अपनी कृति **Women's Bible** में कहा है कि बाइबल ईश्वर के विचारों को प्रकट नहीं करता वरन् पुरूषों के द्वारा अपने तरीके से लिखा गया है, क्योंकि ईश्वर की नजर में स्त्री पुरूष समान है। अतः इसमें महिलाओं को नजर अंदाज किया जाना इसकी कमियों को दर्शाता है। उनके विचार को इंग्लैण्ड में 1879 में महत्व दिया गया जब इंग्लैण्ड के चर्च कमिटी ने बाइबिल ग्रंथ को संशोधित किया, किंतु इस कमेटी में

ISSN: 2348 – 2605 Impact Factor: 5.659 Volume 9-Issue 4, (October-December 2021)

एक भी महिला सदस्य नहीं थी। चर्च के पादरी पर भी मुश्किल से ही महिलाओं को देख सकते हैं। उन्हें नन (इस प्रकार की धर्म संघिनी) का कार्य सौंपा जाता हैं 1992 में इंग्लैण्ड के चर्च में पादरी पद को महिलाओं के लिए खोल दिया पर कैथोलिक चर्च अभी भी महिलाओ को इससे बाहर रखे हुए है।[8]

**इस्लाम धर्म :–**

'इस्लाम' में धार्मिक कट्टरता के कारण स्त्रियों की दशा शोचनीय है। बांग्लादेश की लेखिका तस्लीमा नसरीन के अनुसार इस्लाम ने स्त्रियों के पैरों में बेड़ियाँ डाल रखी हैं। उनके 'लज्जा' उपन्यास को लेकर वहाँ के कट्टरपंथियों ने उनके नाम पर फतवा जारी किया है।

किंतु स्थिति प्रांरभ से इतनी दयनीय नहीं थी। अरब को इस्लाम का केंद्र माना गया है स्त्रियों की सामाजिक स्थिति अरबी समाज में प्राचीन काल से ही पुरूषों से उच्च रही है। स्त्रियों को सामाजिक सम्पर्क एवं विवाह के क्षेत्र में सर्वोच्च अधिकार प्राप्त थे। समय के साथ इनके अधिकारो को ध्वंस कर स्त्रियों को लूटकर बेचा जाने लगा। बाल विवाह, बहु पत्नी विवाह का प्रचलन बढ़ता गया। परिवार पितृ प्रधान होते चले गए एवं महिलाए पुरूषों के पूर्णतया अधीन हो गईं।

हजरत मोहम्मद साहब ने 7 वीं शताब्दी के आरंभ से ही इस्लाम को नया रूप देकर इन पुरानी रूढ़ियों को दूर करने का प्रयास किया। लेकिन फिर भी वह स्त्रियों को अधिक स्वतंत्रता नहीं देना चाहते थे। 'कुरान' ने विवाह के समय स्त्री की आर्थिक सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए उन्हें मेहर का अधिकारी बनाया। लेकिन समय बदलने के साथ–साथ पुरूष वर्ग इसे भी एक तरह से पत्नी का मूल्य मानकर इस पर भी पूर्ण अधिकार जताने लगा। मुगल शासकों के शासन में स्त्रियाँ केवल सुख व सौंदर्य का प्रतीक बन कर रह गयी।[9]

मुस्लिम धर्म स्वयं भी स्त्रियों की स्थिति को ऊँचा उठाने में बाधक हैं इसका प्रमुख कारण इस्लाम धर्म की कट्टरता एवं मुल्ला मौलवियों द्वारा इस धर्म मे किसी भी तरह के परिवर्तन का विरोध करना है। हालांकि इस्लाम के अन्तर्गत स्त्रियों को कुछ प्रमुख अधिकार दिए गए हैं जैसे–

ISSN: 2348 – 2605 Impact Factor: 5.659 Volume 9-Issue 4, (October-December 2021)

- मेहर की राशि छोड़कर तलाक का अधिकार
- इस्लाम धर्म में 15 वर्ष से कम आयु की लड़की के विवाह को मान्यता ना दिए जाने के कारण बाल विवाह का अभाव
- इद्दत की अवधि पूर्ण होने पर पुनर्विवाह का प्रावधान। अपने पिता व पति की सम्पत्ति में से हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार है।

इस्लाम धर्म में भी बहु विवाह एवं पर्दा प्रथा संस्कृति के द्वारा महिलाओं के वस्तुकरण का प्रयास किया गया है। इस्लाम धर्म के अन्तर्गत पुरूषो को एक से अधिक महिला से शादी की अनुमति दी गई है जबकि महिलाओं को ऐसा अधिकार नहीं दिया गया।[10]

धार्मिक कट्टरता के कारण रूढ़िवादी महिलाऐं परिवार नियोजन के साधनों का प्रयोग तक धर्म विरूद्ध मानती हैं, और तर्क देती हैं कि स्त्रियों के जीवन का उद्देश्य ही बच्चों को जन्म देना है। 1978 मे **ऑपरेशन रिसर्च ग्रुप** द्वारा मुस्लिम वर्ग में किए गए सर्वेक्षण के अनुसार यद्यपि अधिकतर पुरूष और स्त्री उत्तरदाता आधुनिक परिवार नियोजन के तरीको को जानते थे, किन्तु या तो वे धार्मिक आधार पर उनका प्रयोग नहीं कर रहे थें या उनका सही जानकारी नहीं थी।[11]

**बौद्ध, जैन एवं सिक्ख धर्म :–**

बौद्ध धर्म के अन्तर्गत भी महिलाओं को धर्मसंगिनी का कृत्य ही सौंपा गया है। जैन धर्म में भी पुरूष वर्ग ही अग्रणी पंक्ति पर है। **सिक्ख धर्म–** सिक्ख धर्म भी वस्तुतः पुरूष प्रधान धर्म है। जो हिम्मत एवं बहादुरी की बात करता है।[12]

**हिन्दु धर्म :–**

भारतीय संस्कृति में परंपरा, धर्म एवं दूसरे अन्य तरीकों के द्वारा पतिव्रता नारी की विचारधारा का प्रसार किया जाता है। सीता, सावित्री, दमयंती जैसी पात्र को आदर्श भारतीय नारी के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।[13] लैंगिक आधार पर अत्यंत ही विरोधाभासी धार्मिक सामाजिक परिस्थिति देखने को मिलती है। एक ओर तो समाज मे स्त्रियों को विद्या, शक्ति और धन का प्रतीक मानकर इसके विभिन्न रूपों सरस्वती, दुर्गा एवं लक्ष्मी मानकर अराधना की जाती है। नवदुर्गा में कन्या पूजन किया जाता है। पति की अर्धांगिनी बनाकर प्रत्येक शुभ कार्य में उसकी उपस्थिति अनिवार्य मानी गयी है। किंतु दूसरी तरफ

ISSN: 2348 – 2605 Impact Factor: 5.659 Volume 9-Issue 4, (October-December 2021)

वह घरेलू हिंसा एवं कन्या भ्रूण हत्या का शिकार बन जाती है। धार्मिक आधार पर विभिन्न कालचक्रों में हिन्दु महिलाओं की स्थिति भी निरन्तर परिवर्तित होती गयी :–

***वैदिक युग*** में धर्म की सबसे बडी अभिव्यक्ति यज्ञ था। पति पत्नी दोनों इसमें भाग लेते थे। दोनों मिलकर प्रार्थनाऐं करते थे और आहूतियाँ डालते थे। लड़कियों का उपनयन संस्कार होता था और वे संध्या की विधि पूरी करती थी।[14] इस प्रकार नारी को पुरूषों के समान शिक्षा, धर्म, राजनीति व सम्पति में अधिकार प्राप्त थे। वंश विस्तार, पिण्डदान, तर्पण आदि में लड़कों का महत्व होने से पुत्री की अपेक्षा बारम्बार पुत्र जन्म का आर्शीवाद दिया जाता था। पुत्र की चाह अवश्य थी किंतु लड़कियों के साथ दुर्व्यवहार का भी कहीं उल्लेख नहीं है। विवाह सूक्त में दस पुत्रों की उत्पत्ति की कामना की गई है। अथर्ववेद के एक सूक्त (अथर्ववेद 6, 2, 3) में प्रार्थना की गई है कि हमारे यहाँ पुत्र का जन्म हो और कन्या का जन्म किसी और के घर में हो।[15]

***उत्तर वैदिक काल*** में धर्म सूत्रों के अन्तर्गत बाल विवाह के निर्देशानुसार स्त्री शिक्षा में बाधा पहुँची, साथ ही कर्मकाण्ड की जटिलता व पवित्रता की धारणा ने स्त्री वर्ग को वैदिक अध्ययन से अलग कर दिया। इसके साथ ही आर्यों ने अपने समुदाय में स्त्रियों की कमी को पूरा करने के लिए अनार्यों से विवाह किया। जो विधि–विधान आदि से अपरिचित थी और इस कारण इनको धार्मिक सामाजिक क्षेत्र से दूर रखना उचित समझा।[16]

***धर्मशास्त्र युग*** में विष्णु संहिता, पाराशर संहिता एवं याज्ञवल्कय संहिता की रचना हुई, जिनमें मनुस्मृति को ही व्यवहार की कसौटी मानकर वेद के नियमों को पूर्णतः तिलांजलि दे दी गई। स्त्रियाँ इस काल में सामाजिक एवं संकीर्ण विचार धारा का शिकार बनी।[17] मनुस्मृति में उल्लिखित है कि पति चाहे गुण रहित हो, व्यसनी हो, दुराचारी हो तो भी पत्नी को उसकी देवता की भाँति सेवा करनी चाहिए। पति सेवा से पत्नी स्वर्ग की अधिकारिणी बनती है। सती–साधवी विधवा पुत्रहीन होती हुई भी स्वर्ग की अधिकारिणी होती है।[18] स्त्री की समस्त स्वतंत्रता को प्रतिबन्धित करते हुए मनुस्मृति में यहाँ तक कह दिया गया कि स्त्री को बचपन में पिता, यौवनावस्था में पति तथा वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण में रहना चाहिए।[19] 300 ईस्वी के लगभग स्मृतिकार याज्ञवल्कय एवं उत्तरवर्त्ती स्मृतिकारों ने कन्याओं के उपनयन का ही निषेध कर दिया। मनु और याज्ञवल्कय ने एक

ISSN: 2348 – 2605 Impact Factor: 5.659 Volume 9-Issue 4, (October-December 2021)

नए सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए कहा कि कन्याओं का विवाह ही उनका उपनयन संस्कार है। पति ही उनका गुरू है और पतिसेवा तथा घर का कामकाज ही उनके लिए यज्ञ है। उपनयन संस्कार और वैदिक शिक्षा का निषेध हो जाने पर कन्यायें द्विज पद से वंचित हो गयीं।[20] साथ ही वैदिक काल में जहाँ हिंदू संस्कृति का आदर्श कर्त्तव्य 'कन्या दान' माना गया था, इसके विपरीत स्मृतिकाल में इसका अर्थ इस प्रकार लिया गया जैसे– कन्या एक वस्तु के समान है जिसका दान किया जाता है। इसे पुनः वापस नहीं लिया जाता और ना ही दान में दिया जाता है। साथ ही दान में प्राप्त करने वाला पात्र इसका प्रयोग अपनी इच्छानुसार कर सकता है।[21]

***महाभारत काल*** के बाद नारी के अधिकारों और उसकी स्वतंत्रता को सीमित करने का जो क्रम शुरू हुआ वह हर्षवर्द्धन के बाद भी 1100 वर्षों तक निरन्तर चलता रहा। इस लंबी अवधि में मुसलमानों के आक्रमण और उसके परिणाम स्वरूप पहले उत्तर भारत में और तदतंर दक्षिण भारत के अधिकांश भाग पर मुस्लिम आधिपत्य की स्थापना, मुस्लिम संस्कृति के प्रसार और विशेषतः पर्दे की प्रथा के प्रचलन से नारी की स्वतंत्रता पर कुठारा घात हुआ।[22]

**भारत में मुगल आधिपत्य एवं सतीप्रथा :–**

11वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही भारतीय समाज पर मुसलमानों का प्रभाव बढ़ने की वजह से हमारी संस्कृति की रक्षा करना जरूरी हो गया था इसलिए ब्राह्मणों ने भारतीय संस्कृति की रक्षा, स्त्रियों के सतीत्व तथा रक्त की शुद्धता बनाए रखने की वजह से स्त्री सम्बन्धी नियमों को अत्यंत कठोर बना दिया। इस युग में रक्त की पवित्रता की संकीर्णता का इतना विकास हुआ कि 5–6 वर्ष की आयु में विवाह होने लगे। पर्दा प्रथा विकसित हुई। पति की मृत्यु के उपरांत पति की चिता के साथ सती हो जाना पतिव्रत धर्म की सर्वोच्च परीक्षा मानी गयी। इस प्रथा को धार्मिक आवरण प्रदान किया गया। अज्ञान के वशीभूत भारतीय समाज ने इन्हीं कुरीतियों और मिथ्यावाद को भारतीय संस्कृति का अंग समझा, जबकि सती प्रथा या आत्मबलि के सम्बन्ध में वैदिक साहित्य मे कोई सीधा संकेत नहीं मिलता। **गुह्य सूत्र, जिनमें घरेलू जीवन के महत्वपूर्ण संस्कारों का अंतयेष्टि संस्कार समेत बहुत विस्तार से वर्णन है, वह भी इस विषय में बिल्कुल मौन है।**[23]

ISSN: 2348 – 2605 Impact Factor: 5.659 Volume 9-Issue 4, (October-December 2021)

संभवतः यह प्रथा इंडो जर्मनिक जाति में प्रचलित थी और वहाँ से इंडो आर्यन जाति में आ गई। ऋग्वेद की दृष्टि में यह अनुचित थी। हालांकि विष्णूस्मृति इसकी प्रशंसा करती है। महा भारत में सती प्रथा के दो उदाहरणों का उल्लेख है। माद्री अपने पति पांडु की चिता पर उसके साथ ही जलकर सती हो गयी थी। वसुदेव की पत्नियाँ अपने पति के शव के साथ जल मरी थीं। जबकि कुरू वंश की अन्य विधवाओं ने अपने पतियों के शवों का दाह संस्कार करने के बाद यथोचित रीति से श्राद्ध कर्म किया था। जब शकों ने इस देश पर आक्रमण कर भीषण उत्पात मचाया, तब राजपरिवारों ने अपनी स्त्रियों के सम्मान की रक्षा के लिए इस प्रथा का अवलंबन किया।[24]

स्मृतियों ने सती प्रथा को विधवा का कर्तव्य एवं स्वर्ग प्राप्ति का साधन बता दिया था। बंगाल में इस प्रथा ने भयंकर रूप धारण कर लिया था। विधवा से सती होने के लिए अनुरोध ही नहीं किया जाता था, प्रत्युत उसे बाध्य किया जाता था। कई बार उसे अफीम आदि मादक द्रव्यों से जोश दिलाकर सती होने के लिए तैयार किया जाता और कई बार उसे पकड़कर पति की चिता पर बैठा दिया जाता था और प्रबंध कर लिया जाता था कि वह भाग ना पाए। इस प्रथा द्वारा विधवा स्त्री को बलि का बकरा बनाया जाता था। वस्तुतः यहाँ पितृसत्ता की घिनौनी राजनीति खेली जाती थी। इसका मुख्य मकसद महिलाओं को जलाकर उसे संपत्ति से अलग रखना था।

उदाहरणस्वरूप राजस्थान के देओराला गांव की रूपकँवर, जिसे आधुनिक समय में सती बना दिया गया था। किंतु तहकीकात द्वारा स्पष्ट हुआ कि इसके बारे कुछ ही दूरी पर रहने वाले उसके माता पिता को कोई सूचना नहीं दी गई। बाद में उसके ससुराल वालों ने उसी सती स्थल पर सती माता के मंदिर का निर्माण करवाया था एवं इससे काफी धन एवं प्रतिष्ठा अर्जित की।[25] 16वीं शताब्दी में अकबर ने इस क्रूर प्रथा को रोकने का प्रयत्न किया था, परंतु उसे सफलता नहीं मिली।[26] बाद में राजाराम मोहन रॉय के अथक प्रयासों द्वारा प्रथा को अमाननीय व दंडनीय घोषित किया गया।

**देवदासी प्रथा :–**

धर्म के नाम पर भारतीय समाज में जिस एक अन्य कुप्रथा को बढ़ावा दिया गया वह थी 'देवदासी प्रथा'। वैभवशाली हिंदू मंदिरों में स्त्रियों का नर्तकी के रूप में रखा जाना

ISSN: 2348 – 2605 Impact Factor: 5.659 Volume 9-Issue 4, (October-December 2021)

प्रचलित था। जो देवमूर्ति के सामने नाचती गाती थीं। इन्हें देवदासी कहते थे।[27] यह प्रथा दक्षिण भारत मे अधिक प्रचलन में थी व इस सम्बन्ध में भी विभिन्न रिवाज जुड़ गए है। कहीं यह मन्नत पूरी होने पर कन्या के मंदिर में समर्पण से जुड़ा है, तो कहीं बड़ी बेटी को मंदिर में दान देने की प्रथा से सम्बन्धित है, तो कहीं गरीबी के कारण पुत्री का पालन करने में असमर्थ माता पिता द्वारा पुत्री को मंदिर में समर्पित कर दिए जाने से सम्बन्धित है। यह भी कहा जाता है युवा लड़कियों का पारंपरिक तौर पर मंदिर के आराध्य देव के साथ विवाह कर दिया जाता था, ये देवदासियाँ अपना शेष जीवन ईश्वर की सेवा करने, मूर्ति को पंखा झलने, उनके सम्मुख दीप जलाने, भजन तथा नृत्य द्वारा ईश्वर को प्रसन्न करने में लगा देती थी। सन् 1800 में कांचीपुरम के प्रमुख मंदिर (अब तमिलनाडु में) से लगभग 100 देवदासियाँ संबद्ध थी। देवदासियों को सामाजिक दृष्टि से हेय माना जाता था। मंदिर वैश्यावृत्ति पर प्रतिबंध के बाद देवदासियों काम होती गईं।[28]

**निष्कर्ष :–**

इस प्रकार विस्तृत अध्ययन से ज्ञात होता है कि धर्म की दृष्टि में तो सभी समान हैं, किन्तु पितृसत्तावादी मानसिकता ने स्त्री को हाशिए पर खड़ा किया है। महिलाओं के अधिकारों का हनन 'धर्म' द्वारा उतना नहीं किया गया, जितना कि पितृसत्तात्मक समाज द्वारा किया गया है। वर्तमान के आधुनिक भारतीय समाज में भी धर्म के नाम पर स्त्रियों पर अनेकानेक प्रतिबंध लगाए जाते हैं, जैसे मासिक धर्म के दौरान महिलाओं को अपवित्र मानना एवं धार्मिक विधि विधान से वंचित रखना। कुछ प्रमुख धार्मिक स्थलों यथा शनि शिंगणापुर, सबरीमाला मंदिर आदि में महिलाओं का प्रवेश वर्जित करना आदि। अभी भी महिलायें विभिन्न प्रतिबंधों से घिरी हैं। पर्दाप्रथा, समाज क्या कहेगा, जैसे प्रश्नों के कारण युवतियाँ ससुराल व पति द्वारा प्रताड़ित होते हुए सब कुछ सहती हैं दहेज की कमी के कारण ससुराल पक्ष द्वारा लड़कियाँ या तो मार दी जाती है या फिर तानों से तंग होकर वे स्वयं ही आत्महत्या कर लेती हैं। प्रेम विवाह करने वाले युवाओं की धर्म, जाति, बिरादरी के नाम पर हॉनर किलिंग कर दी जाती है। आधुनिकता का लबादा ओढ़े समाज की मानसिकता अत्यंत रूढ़िवादी है। दिनोंदिन जनसंख्या अनुपात मे बालिकाओं की संख्या में कमी आना इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। विशेषकर–दिल्ली, पंजाब व हरियाणा जैसे राज्यों में जहाँ सम्पन्नता भी है और शिक्षा भी।

ISSN: 2348 – 2605 Impact Factor: 5.659 Volume 9-Issue 4, (October-December 2021)

वर्तमान में विविध सरकारी प्रयासों द्वारा स्त्री शिक्षा एवं आर्थिक स्वावलबंन को बढ़ावा तो दिया जा रहा है। सामाजिक ढाँचे में भी परिवर्तन आ रहा है, किंतु जब दिल दहलाने वाले एसिड अटैक, निर्भया या दिशा जैसे दर्दनाक घटनाऐं होती हैं और राष्ट्रीय अपराध ब्यूरो के आँकड़े बताते हैं कि घरेलू हिंसा व बलात्कार प्रतिवर्ष बढ़ते ही जा रहे हैं, तो वे पुनः महिला विकास के मार्ग में रोड़ा बन जाते हैं यह असुरक्षित वातावरण स्मरित कराता है कि मुगलों के आक्रमण के दौरान भी महिलाओं के प्रति वीभत्स अत्याचारों ने महिलाओं को शिक्षा व समाज से वंचित कर घर की चारदीवारी में कैद कर दिया था। बहुत लंबे संघर्ष व पीड़ा सहन करने के पश्चात स्त्रियों की दशा में थोड़ा सुधार आया है। खुली हवा में अपनी इच्छानुसार जीने की आजादी का हक पुरूषों की भाँति महिलाओं को भी मिलना चाहिए। और इसके लिए विविध अधिकारों की जानकारी के साथ–साथ उनकी सहज उपलब्धता अति आवश्यक है।

## संदर्भ सूची :–

1. शशि के0 जैन, भारतीय समाज, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर, 1984, पृ0 219
2. वी0गाथा0, जेण्डर, कलकत्ता; स्त्री, 2006, पृ0 53
3. तपन बिस्वाल, मानवाधिकार, जेन्डर एवं पर्यावरण ज्ञान रंजन स्वाई, पितृसत्तात्मक व्यवस्था एक विश्लेषण, वीवा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृ0 194
4. सुनीता परमार, कंटेम्पररी इंडियन वूमैन, कृष्ण गुप्ता, इम्पावरमैंट आफ वूमेन इमर्जिंग डायमैंशन्स, एस0 चांद पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, पृष्ठ–15
5. उपरोक्त, पृष्ठ 33
6. तपन बिस्वाल, पूर्वोक्त, पृष्ठ 230
7. सरिता वशिष्ठ, महिला और कानून, कल्पना प्रकाशन दिल्ली, 2010, पृष्ठ–16
8. तपन बिस्वाल, पूर्वोक्त
9. शशि के जैन, पूर्वोक्त, पृष्ठ– 237
10. तपन बिस्वाल, पूर्वोक्त
11. राम आहूजा, भारतीय समाज, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2000, पृष्ठ 361
12. तपन बिस्वाल, पूर्वोक्त, पृष्ठ 232
13. उपरोक्त, पृष्ठ 211

ISSN: 2348 – 2605 Impact Factor: 5.659 Volume 9-Issue 4, (October-December 2021)

14. राधाकृष्णन्, धर्म और समाज, राजपाल एंड संस, दिल्ली, 1967, पृष्ठ 165
15. कृष्ण दत्त पालीवाल, नारी विमर्श की भारतीय परंपरा, इंद्रनाथ आनंद, प्राचीन भारत में नारी की स्थिति, सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, दिल्ली, 2014, पृष्ठ–127
16. शशि के0 जैन, पूर्वोक्त, पृष्ठ 221
17. उपरोक्त, पृष्ठ–222
18. कृष्णदत्त पालीवाल, पूर्वोक्त, पृष्ठ–155–160
19. मनुस्मृति 9,3
20. कृष्ण दत्त पालीवाल, पूर्वोक्त, पृष्ठ–142
21. राशि के0 जैन, पृष्ठ–227
22. नंदिता मिश्र, मध्य युग में नारी की स्थिति, इंद्रनाथ आनंद, प्राचीन भारत में नारी की स्थिति, पूर्वोक्त, पृष्ठ–157
23. राधाकृष्णन्, पूर्वोक्त, पृष्ठ 210
24. उपरोक्त, पृष्ठ–211
25. तपन बिस्वाल, मानवाधिकार जेण्डर एवं पर्यावरण, ज्ञान रंजन स्वाई पितृ सत्तत्मक व्यवस्था, एक विश्लेषण, वीवा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ 213
26. सत्येन्द्र त्रिपाठी, ब्रिटिश काल में नारी की स्थिति, इंद्रनाथ आनंद, प्राचीन भारत में नारी की स्थिति पूर्वोक्त, पृष्ठ 177
27. राजबली पांडेय, हिन्दु धर्मकोश, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1978, पृष्ठ–238
28. भारत ज्ञानकोष, इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका इंडिया, नई दिल्ली, पृष्ठ 52